भारत में भाषा की राजनीति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डा0 शिवानी
राजनीतिशास्त्र विभाग
डी०ए०वी० सैन्टनरी कॉलिज फरीदाबाद
Email:shivanitanwar1973@gmail.com

सारांश

स्वतंत्रता–पूर्व काल से ही बहुसांस्कृतिक देश भारत में भाषा चेतना का उदय हुआ, जिसके कारण भाषा संघों के रूप में भाषा पहचानों का समेकन हुआ। भाषा की वैचारिक और संचार शक्ति से उभरने वाले इन समेकनों का उपयोग सत्ता हासिल करने और उसे बनाए रखने के लिए एक राजनीतिक उपकरण के रूप में किया गया, जिसे भाषा राजनीति कहा जाता है। इसे हिंदी या उर्दू, राष्ट्रीय या राजभाषा, हिंदी या अंग्रेजी, राष्ट्रीय या क्षेत्रीय, पवित्र या धर्मनिरपेक्ष आदि के बीच संघर्ष के कोण से देखा गया। भाषा राजनीति पर पहले के अध्ययन प्रशासन में भाषा के चुनाव, शिक्षा के माध्यम के रूप में, संविधान में एक स्टेटस सिंबल, राजनीतिक पहचान, भाषा और धर्म, भाषा और जाति आदि तक ही सीमित थे। वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य देश के एकीकरण में भाषा की भूमिका का पता लगाना है। आज कई लोग मानते हैं, कि क्या राज्यों का भाषाई पुनर्गठन किसी अन्य तरीके से किया जा सकता था, न कि भाषा पर। यह भारत जैसे उदार बहुसांस्कृतिक देश में पहचान के निर्माण में भाषा, क्षेत्र और जाति के बीच अंर्तसंबधों की जांच करना चाहता है। अंतत:, यह इस बात का पता लगाने का प्रयास करता है कि भाषा संघर्ष, भाषा आंदोलन, भाषा नीतियों और शिक्षा में भाषा के माध्यम से भाषा की राजनीति किस प्रकार जारी रहती है।

मुख्य बिंदु

भाषा संघर्ष, आंदोलन, भाषा नीतियां, शिक्षा में भाषा आदि।

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 16.09.2020
Approved: 30.09.2020

डॉ0 शिवानी

भारत में भाषा की राजनीति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

RJPP 2020,
Vol. XVIII, No. II,
pp.258-266
Article No. 33

Online available at *:*
https://anubooks.com/?page_id=6391

परिचय

एक आम भाषा समुदाय के सदस्यों को एक सूचना–साझाकरण नेटवर्क में जोड़ती है जिसमें दुर्जेय सामूहिक शक्तियाँ होती हैं। ये प्रभाव उत्पत्ति की पुस्तक में बाबेल के टॉवर के वर्णन में प्रतिध्वनित होते हैं, जिसने मनुष्यों को स्वर्ग के इतने करीब ला दिया कि भगवान को भी खतरा महसूस हुआ। सामाजिक विज्ञान जिज्ञासु रूप से भाषा और शक्ति के बीच के संबंधों का अध्ययन कर रहे हैं। भाषा और शक्ति को जोड़ने वाले बहुआयामी संबंधों के कारण, इस विषय का विश्लेषण सामाजिक विज्ञान और भाषाई दोनों दृष्टिकोणों से किया जाता है। भाषा और शक्ति के बीच जटिल संबंधों के अध्ययन ने समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान और भाषाईविज्ञान जैसे बहुविषयक विज्ञानों को जन्म दिया है। उन्नीसवीं सदी में यूरोप में भाषाई राष्ट्र–राज्यों के बारे में जागरूकता, जिसके कारण भाषा के बारे में धीरे–धीरे चेतना पैदा हुई, भारत की भाषाई पहचान के निर्माण के लिए भी जिम्मेदार थी। यह विचार कि प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्र की अपनी भाषा के आधार पर एक विशिष्ट पहचान है, ने भाषाई शक्ति की गहरी भावना पैदा की। इसके अलावा, भाषाई पहचान, जिसके कारण भाषाई समुदायों का निर्माण हुआ, ने भाषा की राजनीति को जन्म दिया, जो जटिल, परस्पर संबंधित, शक्तिशाली और समान रूप से समस्याग्रस्त है।

भारत की भाषा नीतियां–आधिकारिक भाषाएं, अनुसूचित भाषाएं, त्रिभाषा नीति और शिक्षा में भाषा पहचान–भाषा राजनीति की प्रतिक्रिया और उसका अभिन्न अंग दोनों हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत को आर्थिक गरीबी, सीमा विवाद, राष्ट्रीय सुरक्षा और शरणार्थियों के प्रवास जैसी जरूरी समस्याओं पर विचार करना पड़ा। नेहरू ने भाषाई आधार पर राज्यों का गठन एक जरूरी मुद्दा नहीं माना। हालांकि, राजनीतिक मजबूरियों ने उन्हें राज्यों के भाषाई पुनर्गठन पर गहराई से विचार करने के लिए मजबूर किया। इसलिए भारत को भाषाई आधार पर पुनर्गठित किया गया। 1987 में, गोवा भाषाई पुनर्गठन से गुजरने वाला अंतिम राज्य था।

अध्ययन की पृष्ठभूमि

19वीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर 20वीं सदी के सात दशकों तक, भारत में भाषा ने धर्म के साथ–साथ एक प्रमुख वैचारिक और पहचान की भूमिका निभाई। भाषा के वैचारिक और पहचान के प्रभुत्व को भाषाई संघों के गठन, भाषाई प्रिंट पत्रकारिता और साहित्य के विकास, पार्टी प्रशासन, राष्ट्रीय और राज्य प्रशासन, संघ और राज्यों की आधिकारिक भाषाओं का निर्धारण, संविधान की आठवीं अनुसूची में भाषाओं को शामिल करना और बाहर करना, मातृ भाषा को परिभाषित करना, भाषा नीतियाँ, शैक्षिक नीतियाँ, शास्त्रीय भाषाओं की घोषणा करना, शिक्षा का माध्यम तय करना, राज्यों का भाषाई संगठन और संघीय ढांचे को बनाए रखने और देश के संविधान की प्रभावकारिता को परखने में इसकी शक्ति में देखा जा सकता है। भाषा की वैचारिक और पहचान संबंधी भूमिका राजनीतिक निर्णयों, नीति निर्माण, कार्यक्रम प्रारूपण और प्रशासनिक निर्णयों में एक प्रमुख स्रोत थी, जिसका देश, इसकी राजनीति और इसके नागरिकों पर व्यक्तिगत, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर दूरगामी प्रभाव पड़ा और आज भी कभी जोरदार और कभी हल्के ढंग से प्रभावित करना जारी है।

भाषा की राजनीति भाषा और सत्ता के बीच के संबंधों और भाषाओं, क्षेत्रों, प्रदेशों, संस्कृतियों और साहित्य के बीच के गहरे और जटिल अंतर्संबंधों की जांच करती है जो भाषा की राजनीति को बहुआयामी बनाते हैं। अकेले भाषा का प्रभुत्व एक राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकता है, लेकिन भाषा एक क्षेत्र, जातीयता, क्षेत्र और संस्कृति से कैसे संबंधित है, पंजाबी भाषा अकेले एक राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकती है, लेकिन कैसे एक विशेष जातीयता पंजाबियों, धर्म, भाषा संस्कृति और लिपि को जोड़ती है, यह शक्ति और भाषा के बीच के संबंध को बहुआयामी बनाता है, जिस पर शेल्डन पोलक ने अपने शब्दों में जोर दिया है, यदि भाषाएं राष्ट्रों को अलग करती हैं, तो यह आंशिक रूप से इसलिए है क्योंकि भाषाओं को विशिष्ट राष्ट्रीय चिह्नों में बदलकर राष्ट्रों का निर्माण किया जाता है। भाषा की राजनीति बहुभाषी समाजों के सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास में जटिल, आंतरिक और पदानुक्रमित संबंधों का विश्लेषण करती है। भाषा और राजनीतिक अर्थव्यवस्था के बीच अंतर्संबंध की जांच करना क्योंकि भाषा और भौतिक दुनिया के बीच संबंध भाषा की राजनीति का हिस्सा है। एक प्रमुख भाषा बेहतर व्यापार और व्यवसाय की भाषा होती है। चीन, एक बहुभाषी राष्ट्र जिसने अंग्रेजी को राष्ट्रीय अखंडता के लिए खतरा माना है, ने अपने छात्रों को सामाजिक–आर्थिक स्थिति के आधार पर एक विदेशी भाषा के रूप में अंग्रेजी सीखने की अनुमति दी है और आधुनिकीकरण और राष्ट्र निर्माण की कुंजी के रूप में।

आज भाषा की राजनीति 'प्रमुख' और 'मामूली' भाषाओं से जुड़ी है क्योंकि भाषा समुदाय, अधिकारों और पहचान से जुड़ी है। भाषा अधिकार मानव अधिकार के साथ–साथ व्यक्तिगत अधिकार भी हैं। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 22 में कहा गया है: "जातीय, धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यकों को अपनी संस्कृति का आनंद लेने, अपने धर्म को मानने और उसका पालन करने या अपनी भाषा का उपयोग करने का अधिकार है।" भाषा अधिकार समुदायों के अपनी विशिष्ट पहचान के अधिकार भी हैं। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो भाषा की राजनीति को सरकार की विभिन्न भाषा नीतियों और भाषा पुनरुद्धार, भाषा संकट और भाषा मृत्यु में उनकी भूमिका की जांच करने की आवश्यकता है।

थापर के अनुसार, राष्ट्रवाद और देशभक्ति एक दूसरे के पूरक नहीं हैं। देशभक्ति एक निश्चित क्षेत्र और जीवन शैली के प्रति समर्पण है जिसे कोई व्यक्ति दुनिया में सर्वश्रेष्ठ मानता है, लेकिन दूसरों पर थोपना नहीं चाहता। दूसरी ओर, राष्ट्रवाद को सत्ता की प्यास से अलग नहीं किया जा सकता। प्रत्येक राष्ट्रवादी अपने लिए नहीं, बल्कि उस राष्ट्र या अन्य समूह के लिए अधिक शक्ति और स्थिति चाहता है जिसमें उसने अपनी पहचान को मिलाने का फैसला किया है। राष्ट्रवाद राष्ट्र के प्रति समर्पण है जो उसी राष्ट्र के अन्य लोगों के प्रति देखभाल और नैतिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है। हालाँकि, यह अन्य देशों के खिलाफ जहरीली दुश्मनी के रूप में प्रकट नहीं होना चाहिए। कुछ परिस्थितियों में, दुश्मनी को तर्क के साथ संतुलित करना आवश्यक है। यह अच्छे और भयानक शासन के बीच का अंतर है। इसलिए, राष्ट्रवाद बिना सीमाओं के मौजूद नहीं हो सकता है, और उन सीमाओं को ठीक से निर्धारित किया जाना चाहिए।

एरिक जे, हॉब्सबॉम का तर्क है कि इतिहास का पुनर्निर्माण राष्ट्रवाद की विचारधारा के अनुसार किया जाता है और यह राष्ट्रों के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है। इस प्रकार, इतिहास एकता बनाने और उसे बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो बताता है कि भारत में इतिहास राष्ट्रवादी विचारधाराओं के लिए एक विवादित मैदान क्यों बन गया है। इस हॉब्सबॉम से आवश्यक व्युत्पन्न यह है कि भारत जैसे बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक राष्ट्र में जाति, धर्म, भाषा, बोली आदि के आधार पर राष्ट्रवाद की विशेषता नहीं बताई जा सकती है, जहाँ भाषा को इसे राजनीतिक बनाने में सहायक भूमिका निभानी चाहिए।

अंग्रेजी वैश्वीकरण की भाषा है, जो दुनिया के विभिन्न हिस्सों को एक छतरी के नीचे लाती है। ''यह भाषाई साम्राज्यवाद राजनीतिक अर्थव्यवस्था, भू–राजनीति और संस्कृति के बीच घनिष्ठ संबंध का उदाहरण है। इस प्रकार, अंग्रेजी को विभिन्न माध्यमों से बढ़ावा दिया जाता है, जिसमें गैर–अंग्रेजी भाशी देशों के श्रमिकों के लिए भाषा कौशल, आव्रजन, ब्रिटिश काउंसिल और अन्य शामिल हैं।''

रजनी कोठारी द्वारा लिखित 'पॉलिटिक्स इन इंडिया' भारत के राजनीतिक परिदृश्य पर एक अविश्वसनीय पुस्तक है, जो यह दावा करती है कि भारत की भाषाई व्यवस्था कई मायनों में असाधारण है। विभिन्न देशों– कनाडा, बेल्जियम, स्विटजरलैंड और यूएसएसआर– में समानताएं भारत की तुलना में कुछ भी नहीं हैं। यह दावा कि भाषा और राजनीति के बीच संबंध यूरोपीय राष्ट्रवादियों की कथा का एक अभिन्न अंग था, उन परिस्थितियों में अलग तरह से लागू होता है जहां भाषा का मुद्दा, निश्चित रूप से, बहुआयामी है। लेखक का तर्क है कि भारत में बहुभाषावाद कायम है, और यह धारणा कि एक ही भाषा सार्वजनिक चरित्र के लिए मौलिक है, भारतीय मामले के लिए प्रासंगिक नहीं है।

ऑस्टिन ग्रानविले ने 'द इंडियन कॉन्स्टिट्यूशनः कॉर्नरस्टोन ऑफ द नेशन' (2016) में तर्क दिया है कि भाषा और संविधान आधे–अधूरे समझौते थे। भाषा के मुद्दों को हल करते समय राष्ट्रीय भाषा– अंग्रेजी, हिंदुस्तानी या हिंदी, या उर्दू? क्या यह एक राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए या कई राष्ट्रीय भाषाएँ? साथ ही, क्या केवल एक आधिकारिक भाषा होनी चाहिए या कई आधिकारिक भाषाएँ होनी चाहिए? किस शब्द का उपयोग किया जाना चाहिए, राष्ट्रीय भाषा या राष्ट्रीय भाषाएँ? पहले कौन आता है, राष्ट्रीय भाषा या आधिकारिक भाषा? आधिकारिक भाषा कौन सी होगी, हिंदी या अंग्रेजी? क्षेत्रीय भाषाएँ और राष्ट्रवाद, अल्पसंख्यक भाषाओं का प्रश्न, अंग्रेजी की आधिकारिक भाषा के रूप में अवधि जैसे मुद्दों को भी हल करना पड़ा।

जब भाषा नीतियों और साम्राज्यवाद के कारण कई भाषाएँ लुप्त हो जाती हैं, तो क्या किसी भाषा को मानवाधिकार माना जा सकता है? एस.के. कपूर ने अपनी पुस्तक ह्यूमन राइट्स अंडर इंटरनेशनल लॉ में स्पष्ट किया है कि भाषा भी एक मौलिक और प्राकृतिक अधिकार है, जो व्यक्ति के जीवन के लिए मौलिक है। इसका आनंद हर किसी को लेना चाहिए, चाहे उसकी पहचान, जाति, धर्म, लिंग आदि कुछ भी हो, सिर्फ इसलिए कि वह व्यक्ति एक व्यक्ति है। भाषा का अधिकार किसी के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र ने ''जातीय, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई अधिकारों को मानवाधिकार के रूप में मान्यता दी है।''

इस संबंध में जे.एन. पांडे द्वारा भारत के संवैधानिक कानून में अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी संस्थाओं का गठन और विनियमन करके अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति की रक्षा करने के अधिकार के बारे में दिया गया विस्तृत विवरण महत्वपूर्ण हो जाता है। राजीव भार्गव ने अपनी पुस्तक भारतीय संविधान की राजनीति और नैतिकता में महसूस किया है कि संविधान राष्ट्रवादी है, जो उदारवादी आवेगों को इंगित करने के लिए व्यक्तिगत नागरिक की संप्रभुता को बरकरार रखता है। जब संविधान सभा में मांग की गई कि उर्दू भाषी परिवारों के छात्रों को उर्दू में शिक्षित किया जाना चाहिए, तो गोविंद बल्लभ पंत ने जवाब दिया कि किसी भी धर्म के अनुयायियों के साथ कोई विशेष भाषा जुड़ी नहीं है; इसलिए, किसी अल्पसंख्यक से संबंधित या उसके बारे में भाषा का मुद्दा नहीं उठता है। प्राथमिक विद्यालयों में, हिंदू, मुस्लिम और अन्य बच्चों की मातृभाषा अनिवार्य रूप से एक ही है। बिल्कुल कोई अंतर नहीं है।

भाषा और राजनीति के बीच संबंधों पर चर्चा करते हुए, जेनिफर जैक्सन प्रीस ने 'अल्पसंख्यक अधिकार–विविधता और समुदाय के बीच में सवाल किया कि क्या केवल राजनीतिक महत्व की भाषा ही प्रासंगिक है'। मैजिनी जैसे राजनीतिक नेताओं ने एक ही भाषा में संवाद करने वाले व्यक्तियों के आधार पर एक राष्ट्र की विशेषता बताई। उनका मानना था कि भाषा और राजनीति गहराई से जुड़ी हुई हैं क्योंकि भाषा वह माध्यम है जिसके माध्यम से कानून प्रसारित होते हैं। राजनीतिक जीवन स्पष्ट भाषा के माध्यम से प्रदान किया जाता है; इसलिए, वैध भाषा की संरचना और सार राजनीतिक समुदाय का संकेत थे। क्या भाषा नस्लवाद को बढ़ावा दे सकती है?

राजीव मल्होत्रा ने अपनी पुस्तक, द बैटल फॉर संस्कृत– क्या संस्कृत राजनीतिक, पवित्र या मुक्तिदायक/मृत या जीवित है? में भारत के बारे में चल रहे पश्चिमीकरण के विमर्श को चुनौती दी है। उनके अनुसार, अमेरिका स्थित इंडोलॉजिस्टों ने भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक पहलुओं पर विमर्श पर हावी होना शुरू कर दिया है और बड़े पैमाने पर लिखकर यूरोपीय नस्लवाद और नाजीवाद के लिए संस्कृत को दोषी ठहराया है और यह घोषित करने की कोशिश की है कि ब्राह्मण अभिजात्यवाद ब्रिटिश उपनिवेशवाद और जर्मन नाजीवाद की विचारधाराओं को निर्धारित करने में एक तत्व था और संस्कृत की सामाजिक रूप से दमनकारी प्रकृति ने इसमें योगदान दिया।

एडवर्ड सईद जैसे यूरोपीय प्राच्यविद भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं और तर्क देते हैं कि यूरोपीय प्राच्यविद पूर्वी धर्मों और धर्मग्रंथों का अध्ययन करते हैं, हिंदू धर्म को समझते हैं और नस्लवाद, उपनिवेशवाद और लिंगवाद के चश्मे से हिंदू धर्म के ग्रंथों की व्याख्या करते हैं। इसलिए, एडवर्ड सईद के अनुसार, गैर–भारतीय भारत का अध्ययन नहीं कर सकते। वेंडी डोनिगर ने अपनी पुस्तक ऑन हिंदुइज्म में तर्क दिया है कि प्राच्यविदों को भारत को जीतने की जरूरत है ताकि वे भारत को कुछ ऐसा दे सकें जो उनके अनुसार अंग्रेजी भाषा में पाया जा सकता है, जिसने दलितों को जातिवाद और उत्पीड़न से मुक्त किया है। उत्तर प्रदेश में दलितों द्वारा अंग्रेजी भाषा की देवी के लिए एक मंदिर का निर्माण, जिसमें कलम और भारतीय

संविधान पकड़े हुए दो फुट ऊंची कांस्य प्रतिमा है, उनके विरोध का प्रतीक है। चंद्रभान प्रसाद इस देवता और दलित प्रतिरोध की छवि की पूजा दलित लोगों को पीड़ित करने वाली अज्ञानता और गरीबी से बचने के साधन के रूप में करते हैं। वह अंबेडकर के तर्क से संबंधित हैं कि अंग्रेजी शेरनी का दूध है, और केवल वे ही दहाड़ेंगे जो इसे पीते हैं। इसलिए, वेंडी कहती हैं, गाली की भाषा अवसर की भाषा बन गई है, दलितों की गड़गड़ाहट।

अपनी पुस्तक भारत के संवैधानिक कानून (1993) में, जे.एन. पांडे कहते हैं कि भारतीय संविधान व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं को सफलतापूर्वक संश्लेषित करता है। लेखक इस बात पर जोर देते हैं कि संघ की आधिकारिक भाषा हिंदी होगी, जो देवनागरी लिपि में लिखी जाएगी। हालाँकि, अंकों के अंतर्राष्ट्रीय संस्करणों का उपयोग किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 343 (1), हालाँकि, 15 साल की अवधि के लिए, संसद कुछ उद्देश्यों के लिए अंग्रेजी के उपयोग के लिए कानून बना सकती है। अनुच्छेद 343 (3), ''15 साल की इस अवधि के दौरान भी, राष्ट्रपति संघ के किसी भी आधिकारिक उद्देश्य के लिए हिंदी भाषा और अंग्रेजी और अंकों के देवनागरी रूप के उपयोग को अधिकृत कर सकते हैं। संघ की राजभाषा राज्य के भीतर तथा राज्य और संघ के बीच संचार की राजभाषा होगी (अनुच्छेद 246), लेकिन दो या अधिक राज्य हिंदी को संचार की राजभाषा बनाने पर सहमत हो सकते हैं।''

अनुच्छेद 345 के अनुसार किसी राज्य का विधानमंडल हिंदी या राज्य में प्रयुक्त होने वाली किसी एक या अधिक भाषाओं (असमिया, बंगाली, डोगरी, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगु, उर्दू और उर्दू) को राज्य में राजभाषा घोषित कर सकता है। हिंदी के लिए निर्देश अनुच्छेद 351 भाषा विकास का प्रावधान करता है। यह संघ पर हिंदी के प्रचार–प्रसार को बढ़ावा देने, उसका विकास करने, उसे भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने तथा उसकी चमक–दमक में बाधा डाले बिना हिंदुस्तानी और भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और अभिव्यक्ति को आत्मसात करके उसकी समृद्धि सुनिश्चित करने का कर्तव्य डालता है। इसके लिए शब्दावली मुख्य रूप से संस्कृत से और गौण रूप से अन्य भाषाओं से ली गई है। यह कर्तव्य भारतीय संविधान द्वारा संघ पर आरोपित किया गया था। यदि संसद यह विकल्प प्रदान करती है, तो सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की सुनवाई हिंदी में की जा सकती है। लेखक यह उद्धृत करते हुए निष्कर्ष निकालता है कि जब तक संसद कानून द्वारा अन्यथा निर्धारित नहीं करती है, तब तक सर्वोच्च और उच्च न्यायालयों की सभी प्रक्रियाएं और विधेयकों, अधिनियमों और आदेशों का आधिकारिक पाठ अंग्रेजी में होना चाहिए। (अनुच्छेद 348)।

संसद द्वारा 1963 के आधिकारिक अधिनियम की पुष्टि की गई, जिसने भविष्य के आधिकारिक उद्देश्यों के लिए अंग्रेजी के अनिश्चितकालीन उपयोग को सुनिश्चित किया। 26 जनवरी, 1975 के बाद इस स्थिति की समीक्षा की जानी थी। इसकी अभी तक समीक्षा नहीं की गई है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 345 के तहत, भारत के अलग–अलग राज्यों को अपने

आधिकारिक उद्देश्यों के लिए अपनी पसंद की किसी भी भाषा का उपयोग करने का अधिकार दिया गया है। इस संबंध में, केंद्र–राज्य संबंधों पर सरकारिया आयोग के प्रस्ताव उल्लेखनीय हैं: (1) सरकार का काम, चाहे केंद्र हो या राज्य, स्थानीय लोगों से जुड़ा या उन्हें प्रभावित करने वाला स्थानीय भाषा में किया जाना चाहिए। (2) देश की एकता और अखंडता के हित में सभी राज्यों में समान रूप से त्रि–भाषा सूत्र को उसकी सही भावना में लागू करने के लिए प्रभावी कदम उठाए जाने चाहिए। (3) आचार संहिता का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।

भाषा राजनीतिः भाषा राजनीति कई क्षेत्रों को संदर्भित करती है जहां भाषा और राजनीति परस्पर क्रिया करती हैं और ऐतिहासिक और राजनीतिक परिणाम उत्पन्न करती हैं। यह भाषा(ओं) की वैचारिक शक्ति और उसके प्रभुत्व और अधीनता के रूपों का पता लगाती है। यह भाषाई अधिकारों, भाषा और पहचान निर्माण, भाषा और शिक्षा, भाषा और कानून, तथा भाषा और प्रशासन का विश्लेषण करता है और वैकल्पिक, गैर–पारंपरिक और कभी–कभी कट्टरपंथी सामाजिक और राजनीतिक इतिहास की ओर ध्यान आकर्षित करता है। भाषा के व्याकरणिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आयाम हैं। भाषा की राजनीति भाषा की व्याकरणिक और सामाजिक विशेषताओं और क्षेत्रों, प्रदेशों, संस्कृतियों और साहित्य के साथ इसके गहन अंतर्संबंधों पर केंद्रित है। भाषा की राजनीति बोली, भाषा, शिक्षण माध्यम, संचार और प्रशासन पर विवादास्पद है। भाषा की राजनीति विभिन्न क्षेत्रों में पहचान, जातीयता, दृष्टिकोण और भाषा के उपयोग को जोड़ने और अलग करने से उत्पन्न हो सकती है। भाषाई राजनीति बहुभाषी राष्ट्रों या समुदायों में सत्ता हासिल करने और बनाए रखने के लिए समझौता और आम सहमति के माध्यम से संघर्ष का समाधान है।

निष्कर्ष

पहचान की राजनीति सामाजिक समूहों के हितों और धारणाओं पर आधारित है। पहचान की राजनीति में, एक विशेष नस्लीय, धार्मिक, जातीय, सामाजिक–आर्थिक या सांस्कृतिक पहचान वाले समूह व्यापक राजनीतिक समूहों पर विचार किए बिना अपने हितों या चिंताओं की वकालत करते हैं। पहचान की राजनीति वह तरीका है जिसमें लोगों की पहचान शिथिल रूप से जुड़े सामाजिक समूहों के माध्यम से उनकी राजनीति को प्रभावित करती है। पहचान का उपयोग समूह भेद स्थापित करने तथा कथित अनुचितता या अन्याय के संदर्भ में प्रभाव और सम्मान प्राप्त करने के लिए किया जाता है। 1950 के दशक के उत्तरार्ध तक भारत में राजनीति के लिए पहचान आवश्यक नहीं थी, जब राजनीतिक और आर्थिक उथल–पुथल ने इसे स्पष्ट कर दिया। वर्तमान शोध का समापन करते हुए, शोधकर्ता ने ऊपर चर्चा किए गए विषयों से महत्वपूर्ण निष्कर्षों को दोहराया है। निष्कर्षों से यह स्पष्ट है कि स्वतंत्र भारत में पहचान निर्माण और राजनीतिक जन–आंदोलन के लिए भाषा एक शक्तिशाली उपकरण है। राजनीति के उपकरण के रूप में भाषा की शक्ति इसकी भावनात्मक अपील और सामुदायिक एकजुटता में निहित है। राजनीतिक अभिजात वर्ग जो इसे राजनीति के उपकरण के रूप में देखते हैं, इसका उपयोग सत्ता हासिल करने और बनाए रखने के लिए करते हैं। इसलिए भाषा

की राजनीति के आरंभकर्ता और प्रसारक आम जनता नहीं बल्कि राजनीतिक अभिजात वर्ग और सरकारें हैं जो अपने घोषणापत्रों, एजेंडों, नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से भाषा की राजनीति को आगे बढ़ाते हैं। पहचान के प्रतीक के रूप में भाषा राष्ट्रीय एकीकरण या विघटन का साधन हो सकती है और राज्यों के विभाजन का कारण बन सकती है। भाषा की शक्ति तब और बढ़ जाती है जब इसे धर्म, जातीयता और भूगोल से जोड़ा जाता है। भारत में इस बात से पूरी तरह इनकार नहीं किया जा सकता कि भाषा की राजनीति जाति, धर्म, जातीयता और लिपि जैसी अन्य पहचानों से असंबद्ध नहीं है। भाषा की राजनीति स्वतंत्रता के शुरुआती वर्षों में राष्ट्रीय एकता और देश के संघीय ढांचे के लिए खतरा हो सकती थी, लेकिन अब ऐसा लगता है कि राज्यों के भाषाई पुनर्गठन में भाषा ने अपनी चमक खो दी है। आज भी सरकार अपनी भाषाई और शैक्षिक नीतियों के जरिए भाषा की राजनीति का एजेंट तभी बनती है जब वे पक्षपातपूर्ण हों और किसी भाषाई समुदाय की पहचान और उसकी शैक्षिक और आर्थिक प्रगति के लिए खतरा पैदा करती हों।

References: -

- Pinker, Steven. 2015. The Language Instinct. U.K.: Penguin Random House. P. 14.
- Sarangi, Asha (ed.) 2010. Language and Politics in India: Themes in Politics. Oxford: Oxford University Press. P. 2.
- Kapoor, S.K.2014. Human Rights Under International Law and Indian Law. Allahabad: Central Law Agency. P. 52.
- Sridhar. M. and Mishra, Sunita.2017. Language Policy and Education in India. New York: Routledge. Pp. 43-44.
- Sarangi, Asha (ed.) 2010. Language and Politics in India: Themes in Politics. Oxford: Oxford University Press. P. 37.
- Commuri, Gitika. 2010. Indian Identity Narratives and the Politics of Security. New Delhi: Sage Publications India Pvt Ltd. P. 5.
- Sarangi, Asha (ed.) 2010. Language and Politics in India: Themes in Politics. Oxford: Oxford University Press. P. 37.
- Thapar, Romila; Noorani, A.G. and Menon, Sadanand. 2016. On Nationalism. New Delhi: Aleph Book Company. P. x-xi.
- Nayak, Pramod K. (2008) Postcolonial Literature: An Introduction. Noida: Dorling Kindersley. P. 245.
- Kothari, Rajni. 2016. Politics in India: New Delhi: Orient Blackswan Private Limited. P. 326.
- Chandra, Bipin, Mukherjee Mridula and Mukherjee, Aditya 2008: India Since Independence: Penguin Books Private Limited, India. P. 115.

- Pandey, J. N. 2015. Constitutional Law of India. Allahabad: Central Law Agency. P. 376.
- Bhargava, Rajeev (Ed.). 2009. Politics and Ethics of the Indian Constitution. New Delhi: Oxford University Press. P. 132.